साधना का सार है समाधि। सर्वस्व है, उपसंहार है। निष्कर्ष है। फल है। प्रतिफल है। परिणाम है। समाधि दो शब्दों से मिलकर बना है- सम और धी। सम यानी सम्यक या एक जैसा होना। धी यानी बुद्धि या प्रज्ञा। इस प्रकार समाधि का अर्थ हुआ बुद्धि का एक समान स्तर पर होना। समत्व की स्थिति में होना। समदर्शी होना। समदृष्टि होना। स्थिर बुद्धि होना। इसका एक अर्थ है समय आधि अर्थात समय के पार जाना। योग-साधना की चरम अवस्था है समाधि, लेकिन ध्यान रहे समाधि मंजिल नहीं है, यह केवल एक पड़ाव है। आध्यात्म की असली यात्रा इसके बाद ही शुरू होती है।

आचार्य प्रदीप द्विवेदी
आध्यात्मिक लेखक

योग-साधना की चरम अवस्था है समाधि

त्रिगुणात्मक प्रकृति के प्रभाव से परे

यदि कोई साधक समाधि की अवस्था को उपलब्ध है, तो इसका अर्थ यह हुआ कि साधक सम अवस्था में है। वह सुख-दुख, हानि-लाभ, मान-अपमान आदि द्वंदों से मुक्त है, परे है। उस स्थिति में साधक का कोई पृथक अस्तित्व नहीं रहता। साधक का ब्रह्म में अवस्थान हो जाता है। भगवान की सत्ता, चैतन्य और आनंद अपने आप साधक की वाणी, भाव और कार्य के द्वारा पूर्ण रूप से प्रस्फुटित होने लगते हैं। समाधि की अवस्था में प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति आदि चित्तवृत्तियां मिट जाती हैं। समाधि की अवस्था को पा लेने पर साधक जीवमात्र को जीवन-मरण और संसारचक्र में घुमाने वाले दुःखदायक अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश आदि पंचक्लेशों से मुक्त हो जाता है, पर यह अवस्था पाना आसान नहीं है। कई पड़ाव पार करने होते हैं। एक लंबी अवधी की प्रक्रिया है। आत्मा के ऊपर से अविद्या, अज्ञान का आवरण हट जाता है। जिस प्रकार बादलों के आवरण से मुक्त होते ही सूर्य का तेज प्रकट हो जाता है, वैसे ही अविद्या, अज्ञान का आवरण हटते ही, मिटते ही आत्मा अपने यर्थास्वरूप को पहचानकर परमात्मा में स्थित हो जाती है। साधक सत, रज, तम आदि त्रिगुणात्मक प्रकृति के प्रभाव से परे हो जाता है। वह शब्द, रूप, रस, गंध आदि तन्मात्राओं के प्रभाव से भी परे हो जाता है।

समाधि के चरण

- समाधि के दो चरण या स्तर बताए गए हैं- संप्रज्ञता व असंप्रज्ञता। संप्रज्ञता समाधि के 4 प्रकार हैं- पहला है सवितर्क समाधि। यह समाधि का वह रूप है, जिसमें स्थूल विषय पर ध्यान लगाया जाता है। उदाहरणस्वरूप मूर्ति पर ध्यान जमाने को सवितर्क समाधि कहा जाता है। दूसरी है सविचार समाधि। यह समाधि का वह रूप है, जिसमें सूक्ष्म विषय पर ध्यान लगाया जाता है। इस समाधि में कभी-कभी तन्मात्रा भी ध्यान का विषय होती है। तीसरी है सानंद समाधि। इस समाधि में ध्यान का विषय इंद्रियां रहती हैं। हमारी इंद्रियां 11 हैं- 5 ज्ञानेन्द्रियां, 5 कर्मेन्द्रियां और मन। इन्हीं पर ध्यान लगाया जाता है। चौथी है सस्मित समाधि। इस अवस्था में ध्यान का विषय अहंकार है। अहंकार को अस्मिता कहा जाता है। कुछ विद्वानों का कहना है कि संप्रज्ञता समाधि वैराग्य से धुले हुए निर्मल चित्त की परिणीति है। इस समाधि में चित्त शुद्ध तो होता है, पर चित्त में कर्मों के संस्कारों के बीज अभी भी शेष रहते हैं। इसलिए इसे सबीज समाधि भी कहते हैं। इसलिए इस सबीज को निर्बीज करने के लिए समाधि के अगले चरण में प्रवेश करना होता है, जिसे असंप्रज्ञता या निर्बीज समाधि कहते हैं। असंप्रज्ञता समाधि में सारी मानसिक क्रिया की समाप्ति हो जाती है। मन केवल अप्रकट संस्कारों को धारण किए रहता है।

- इस प्रकार समाधि का पहला चरण अर्थात संप्रज्ञता समाधि-शुचिता का है। समाधि का दूसरा चरण अर्थात असंप्रज्ञता समाधि-विलीनता का है। समाधि के प्रथम चरण अर्थात संप्रज्ञता समाधि में साधक के मन की सारी अशुद्धि तिरोहित हो जाती है। सभी विकार व बुराइयां मिट जाती हैं। पर चित्त में कर्म संस्कारों के बीज बने रहते हैं। समाधि के दूसरे चरण अर्थात असंप्रज्ञता समाधि में कर्म संस्कारों के बीज भी नष्ट हो जाते हैं और चित्तवृत्तियों का पूर्णतः निरोध हो जाता है। असंप्रज्ञता समाधि की अवस्था में बुराई भी गिर जाती है और अच्छाई भी। यहां तक कि अच्छाई या शुद्ध अवस्था को धारण करने वाला मन भी समाप्त हो जाता है। यह अ-मन की अवस्था है। मन की यह समाप्ति प्रकारांतर से देहबोध की समाप्ति है। इस अवस्था में देह के पृथक होने का एहसास होता है। इस अवस्था में आत्मा अपने यथार्थस्वरूप को पहचान लेती है और आत्मा का संपर्क विभिन्न विषयों से छूट जाता है। यही मोक्ष की अवस्था है। नियत समय, नियम स्थान, नियमित साधना व सात्विक आहार-विहार व संयम का पालन करते हुए कोई भी साधक इस परम आनंद, परम सुख की अवस्था को पा सकता है। बशर्ते उसे पूर्णगुरू का सानिध्य मिले तब। अन्यथा भटकाव निश्चित है।

पौराणिक कथा

गांधारी को 100 पुत्रों का वरदान

हस्तिनापुर समय के साथ आगे बढ़ रहा था। माता सत्यवती और पितामह भीष्म अब अतीत की स्मृतियों को पीछे छोड़ वर्तमान में स्थिर हो चुके थे। भीष्म ने अपनी महान प्रतिज्ञा के अनुसार स्वयं को पूरी तरह हस्तिनापुर और उसके सिंहासन की रक्षा में समर्पित कर दिया था, वहीं सत्यवती भी इस गौरवशाली कुरुवंश की मर्यादा और सुरक्षा में तल्लीन थीं। धृतराष्ट्र और पांडु दोनों का विवाह संपन्न हो चुका था और अब राजवंश में नई पीढ़ी के आगमन की आशा जाग उठी थी।

वैशंपायन ने वर्णन किया कि महाराज पांडु ने अपनी पत्नियों कुंती और माद्री के साथ कुछ समय सुखपूर्वक व्यतीत किया, किंतु शीघ्र ही उन्होंने राज्य की बागडोर भीष्म के संरक्षण में सौंपकर दिग्विजय के लिए प्रस्थान किया। वे जिस दिशा में गए, वहां के अनेक राज्यों को अपने पराक्रम से जीत लिया। कहीं उन्होंने मैत्री संधियां स्थापित कीं, तो कहीं अन्यायी राजाओं को हटाकर न्यायपूर्ण शासन की स्थापना की। कई महीनों तक चले इस अभियान के बाद वे अपार धन-संपदा, स्वर्ण और रत्न लेकर हस्तिनापुर लौटे।

उनके लौटने पर नगर में उत्सव का वातावरण था। भीष्म ने उन्हें स्नेहपूर्वक आलिंगन किया, विदुर ने आशीर्वाद दिया और धृतराष्ट्र ने उनके पराक्रम की सराहना की। माताओं ने स्नेह बरसाया और कुंती-माद्री ने आरती उतारकर उनका स्वागत किया। पांडु द्वारा लाया गया धन राजकोष को समृद्ध कर गया। उन्होंने बड़ों को आभूषण भेंट किए और प्रजा में भी उदारता से दान वितरित किया। इसके बाद पांडु अपनी पत्नियों के साथ वन की ओर चले गए, जहां वे सरल और शांत जीवन व्यतीत करने लगे। उन्हें शिकार का विशेष शौक था और जब वे धनुष-बाण तथा शस्त्रों से सुसज्जित होकर वन में निकलते, तो उनका तेज किसी देवता के समान प्रतीत होता। नगरवासी और वनवासी दोनों ही उनसे अत्यंत प्रेम और सम्मान करते थे। धृतराष्ट्र की अनुमति से उन्हें वन में सभी आवश्यक सुख-सुविधाएं भी भेजी जाती थीं।

इधर हस्तिनापुर में भी घटनाएं चलती रहीं। भीष्म ने एक सुशील कन्या से विदुर का विवाह कराया, जिनसे आगे चलकर बुद्धिमान संतानों का जन्म हुआ। उसी समय गांधारी भी गर्भवती हुईं। उनके विषय में कहा जाता है कि उन्हें शिव से सौ पुत्रों का वरदान प्राप्त था। एक दिन जब वे इस वरदान के विषय में चिंतन कर रही थीं, तभी महर्षि वेदव्यास महल में पधारे। थकान और कष्ट के बावजूद गांधारी ने उनकी अत्यंत श्रद्धा से सेवा की। प्रसन्न होकर व्यास ने उन्हें वर मांगने को कहा। तब गांधारी ने अपने पति के समान सौ पुत्रों की कामना व्यक्त की। व्यास के आशीर्वाद से उन्होंने गर्भ धारण किया और अपने सौ पुत्रों के जन्म की प्रतीक्षा करने लगीं।

पीपल के नीचे दीपक जलाने से जीवन में आती है समृद्धि

पीपल के पेड़ के नीचे पांच मुखी (पंचमुखी) दीपक जलाना ज्योतिषीय और धार्मिक रूप से अत्यंत शुभ माना जाता है, जो मुख्य रूप से शनि दोष, साढ़ेसाती और ढैया के अशुभ प्रभावों को कम करता है। यह शनिवार को धन-समृद्धि, सुख-शांति और पितृ दोष से मुक्ति पाने का एक उपाय है, जिससे नकारात्मक ऊर्जा दूर होती है।

अनिल सुधांशु
ज्योतिषाचार्य

शनि दोष और साढ़ेसाती में राहत - पीपल को शनिदेव का प्रतीक माना जाता है, इसलिए शनिवार को सरसों के तेल का दीपक जलाने से शनि के अशुभ प्रभाव कम होते हैं और मानसिक शांति मिलती है।

धन और सुख-समृद्धि- मान्यता है कि पीपल के पेड़ के नीचे नियमित या शनिवार को दीपक जलाने से मां लक्ष्मी प्रसन्न होती हैं और घर में धन-धान्य की कमी नहीं होती। पितृ दोष से मुक्ति, पीपल के नीचे शाम के समय दीपक जलाने से पितर शांत होते हैं और पितृ दोष दूर हो सकता है।

पंच तत्वों का संतुलन- पंचमुखी दीपक (5 मुखी) पांच तत्वों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) का प्रतीक माना जाता है, जो जीवन में संतुलन लाता है।

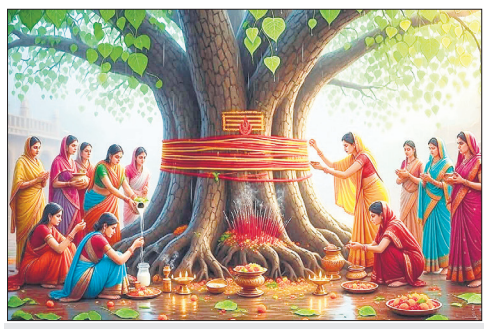

दीपक जलाने के नियम

समय- शाम के समय (गोधूलि बेला) दीपक जलाना सबसे उत्तम है।
तेल- सरसों के तेल या घी का उपयोग करें।
परिक्रमा- दीपक जलाने के बाद पीपल के पेड़ की 7 बार परिक्रमा करना शुभ माना जाता है।
पीपल के पेड़ के नीचे पंचमुखी दीपक जलाना एक बेहद असरदार उपाय माना गया है, दीपक की लौ सिर्फ रौशनी नहीं देती, ये सूर्य तत्व का प्रतीक है। यही लौ जब पीपल के नीचे जलती है, तो ये सूर्य, शनि, राहु-केतु जैसे ग्रहों के बीच संतुलन बनाती है। इससे जीवन में स्थिरता और शांति आती है। हिंदू धर्म में पंचमुखी दीपक (पांच मुख वाला दीपक) का विशेष आध्यात्मिक और वास्तु महत्व है। यह पांच तत्वों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) और दिशाओं का प्रतीक है। इसे जलाने से घर में सकारात्मक ऊर्जा का संचार, वास्तु दोष का निवारण, सुख-समृद्धि की वृद्धि और शत्रु-बाधा से मुक्ति मिलती है।

पंचमुखी दीपक का महत्व और लाभ

- **लक्ष्मी और बरकत :** यह दीपक अष्ट लक्ष्मी (धन, समृद्धि आदि) को आकर्षित करता है, जिससे घर में धन-धान्य की कोई कमी नहीं रहती।
- **वास्तु दोष दूर करना :** घर के मुख्य द्वार पर या पूजा घर में इस दीपक को जलाने से नकारात्मक ऊर्जा नष्ट होती है और सकारात्मक ऊर्जा का वास होता है।
- **हनुमान जी की कृपा :** विशेष रूप से मंगलवार या शनिवार को हनुमान जी के सामने पंचमुखी दीपक जलाने से हनुमान जी के पंचमुखी अवतार की कृपा प्राप्त होती है, जिससे कष्ट दूर होते हैं और साहस व सुरक्षा मिलती है।
- **पांच दिशाओं की सुरक्षा :** यह दीपक पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और ईशान कोण, इन पांचों दिशाओं से आने वाली बाधाओं को दूर करता है।
- **प्रयोग विधि :** इसे आमतौर पर शाम के समय (प्रदोष काल) में गाय के शुद्ध घी या सरसों के तेल में जलाना सबसे उत्तम माना जाता है।
- **सावधानी :** पंचमुखी दीपक को जलाते समय ध्यान रखें कि सभी पांचों मुख अलग-अलग दिशाओं में हों।
- **सरसों का तेल :** पीपल की जड़ में या उसके नीचे सरसों के तेल का दीपक जलाना सबसे महत्वपूर्ण है, इसमें कुछ काले तिल भी डालें।
- **काला कपड़ा :** पीपल के पेड़ में काला कपड़ा या मौली (कलावा) बांधने से पितृ दोष, शनि और राहु-केतु के अशुभ प्रभाव कम होते हैं। काले तिल और उड़द की दाल : जल में काले तिल मिलाकर अर्पित करें।
- **गुड़ :** गुड़ मिला जल या गुड़ का भोग अर्पित करने से सूर्य-शनि का दोष कम होता है।

कच्चा सूत : पीपल के पेड़ के चारों ओर 5 या 7 बार कच्चा सूत लपेटें।
धूप/अगरबत्ती : सुगंधित धूप से नकारात्मकता दूर होती है।

बोध कथा

पत्थर और बांसुरी

एक बहुत ही कुशल मूर्तिकार था, जो पहाड़ों से पत्थर चुनकर सुंदर मूर्तियां बनाया करता था। एक दिन वह जंगल में गया और उसे दो बड़े पत्थर मिले। उसने सोचा, इनसे मैं दो महान कलाकृतियां बनाऊंगा। उसने पहले पत्थर पर अपनी छेनी से वार करना शुरू किया। जैसे ही पहली चोट पड़ी, पत्थर के भीतर से एक दर्द भरी कराह निकली- "रुको! मुझे बहुत दर्द हो रहा है। कृपया मुझ पर वार मत करो, मुझे वैसे ही रहने दो जैसा मैं हूं।" मूर्तिकार दयालु था, उसने उस पत्थर को छोड़ दिया। वह दूसरे पत्थर के पास गया। जब उसने उस पर काम शुरू किया, तो वह पत्थर भी कांप रहा था, लेकिन उसने एक शब्द नहीं कहा। मूर्तिकार ने उसे तराशना जारी रखा। हफ्तों की कड़ी मेहनत, चोट और घर्षण के बाद, उस साधारण पत्थर ने एक अत्यंत सुंदर बांसुरी बजाते हुए बालक की मूर्ति का रूप ले लिया।

कुछ समय बाद, उस जंगल के पास एक भव्य मंदिर बना। मूर्तिकार ने वह 'बांसुरी बजाते बालक' की मूर्ति मंदिर के गर्भगृह में स्थापित कर दी। लोग दूर-दूर से उस मूर्ति की सुंदरता देखने और दर्शन करने आने लगे। तभी मंदिर के कर्मचारियों को अहसास हुआ कि मंदिर के द्वार पर एक ऐसे पत्थर की जरूरत है, जिस पर लोग अपने जूते-चप्पल उतार सकें। मूर्तिकार को याद आया कि जंगल में एक पत्थर उसने बीच में ही छोड़ दिया था। वह उसे उठा लाया और मंदिर की सीढ़ियों के पास रख दिया।

एक रात, जब मंदिर के पट बंद हो गए, तो नीचे रखे उस पत्थर ने ऊपर विराजमान मूर्ति से पूछा-"यह कैसा अन्याय है? हम दोनों एक ही पहाड़ के टुकड़े थे, एक ही दिन यहां लाए गए, लेकिन आज लोग तुम्हारी पूजा कर रहे हैं, तुम्हें फूलों का हार पहना रहे हैं और मुझ पर धूल-मिट्टी झाड़कर निकल जाते हैं। ऐसा क्यों?"

मूर्ति ने बड़ी शालीनता से उत्तर दिया- "मित्र, याद करो वह दिन जब कलाकार ने पहली चोट तुम पर की थी। तुमने दर्द से बचने के लिए संघर्ष को ठुकरा दिया और उसी अवस्था में रहना चुना, जिसमें तुम थे। मैंने उस हर चोट को सहा, हर घाव को अपनी प्रगति माना और खुद को तराशने दिया। आज मैं इसलिए पूजा जा रहा हूं, क्योंकि मैंने 'चोट' सहने का साहस दिखाया और तुम इसलिए पैर रखने के काम आ रहे हो, क्योंकि तुमने आराम को विकास से ऊपर रखा।"

कथा से सीख मिलती है कि जीवन में आने वाली कठिनाइयां और संघर्ष वास्तव में ईश्वर की 'छेनी और हथौड़ी' हैं, जो हमें एक बेहतर इंसान के रूप में तराश रही होती हैं। यदि हम आज के संघर्ष से भागेंगे, तो हम कल की ऊंचाई कभी नहीं छू पाएंगे।

-प्रमोद श्रीवास्तव